शशि कुमार बनाम उत्तरी हरियाणा बिजली वितरण निगम
और अन्य (माननीय न्यायमूर्ति एस.एस. निज्जर)

समक्ष एस.एस. निज्जर और जे.एस. नारंग, माननीय न्यायमूर्ति

शशि कुमार — याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तरी हरियाणा बिजली वितरण निगम और अन्य — उत्तरदाता

C.W.P. No. 2003 of 14375
7 दिसंबर, 2004

भारत का संविधान, 1950 — Art.226 — पंजाब सिविल सेवा नियम, वॉल्यूम 1 , भाग 1— नियम 7.5 — भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1988 — धारायें 7 और 13 — प्रार्थी को 1988 अधिनियम के तहत सज़ा — सेवा से निष्कासन — अपील पर, उच्च न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ता को संदेह का लाभ देकर बरी कर देना — याचिकाकर्ता सभी परिणामी लाभ के साथ बहाली का दावा करता है — याचिकाकर्ता की याचिका ख़ारिज — चुनौती—' संदेह से परे अभियोग साबित ना होने का लाभ 'और' सम्मानजनक बरी' की व्याख्या — दंड प्रक्रिया संहिता में सम्मानजनक बरी का प्रावधान नहीं- संहिता में एकमात्र शब्द 'डिस्चार्ज' या बरी हैं- 'सेवा से हटाने का आदेश पूरी तरह से याचिकाकर्ता की सजा पर आधारित — आदेश किसी भी परिस्थिति की तरफ़ इशारा नहीं करते जो याचिकाकर्ता के आचरण से संबंधित हो — याचिकाकर्ता को सेवा में सभी परिणामी लाभों के साथ बहाल करने का आदेश — उच्च न्यायालय के निर्णय के आधार पर प्रतिवादियों द्वारा प्रार्थी की आगे की विभागीय जाँच की मंज़ूरी नहीं।

उत्तरदाताओं द्वारा दिये गये आदेश की जांच में पाया गया कि प्रार्थी को सेवा से हटाने का आदेश प्रार्थी के दोषारोपण पर आधारित था। आदेश में यह उल्लेख है कि प्रार्थी के दोषारोपण के कारण, उसे सेवा से हटाया जाता है। उक्त वाक्य के अलावा, आदेश में प्रार्थी के व्यवहार से संबंधित किसी भी परिस्थितियों का उल्लेख नहीं है, जो प्रार्थी के दोषारोपण से संबंधित हो सकती है। इसलिए, हमारी राय में, इस आधार पर विवादित आदेश को रद्द किया जाना चाहिए,

क्योंकि इसमें महत्त्वपूर्ण तथ्यों का ध्यान नहीं रखा गया है। वैसे भी, प्रार्थी को अपील में बरी कर दिया गया था, तो उसे सेवा से हटाने के आदेश का आधार अब मौजूद नहीं था।

पैरा 6

शब्द " सम्मांजनक बरी " या "संपूर्णत्य दोषमुक्त" दंड प्रक्रिया संहिता या आपराधिक विधिविज्ञान में अनजान हैं। हमारे विचार में कानून के दृष्टिकोण से प्रार्थी को सभी लाभों के साथ सेवा में पुनः बहाल होने का स्पष्ट अधिकार है।

(पैरा 7 और 11)

आर. के. मलिक, याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता

गिरिश अग्निहोत्री, प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता

<u>निर्णय</u>

एस**.** एस**.** निज्जर**,** माननीय न्यायमूर्ति **(**मौखिक**)**

(1) दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं की सहमति से रिट याचिका अंतिम निपटान के लिए मोशन चरण में लिया जाता है।

(2) भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत इस रिट याचिका में याचिकाकर्ता ने उपरेषण रिट जारी करने जिसमें उसने 27 अगस्त, 2003 के आदेश को रद्द करने और उत्तरदाताओं को सभी परिणामी लाभों के साथ बहाल करने की याचिका की है। के लिए आगे के निर्देशों के लिए याचिकाकर्ता. याचिकाकर्ता को 19 नवंबर, 1986 को सहायक फोरमैन के रूप में नियुक्त किया गया था। जुलाई, 1986 में उसे सीधे जूनियर इंजीनियर के

रूप में नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता के अनुसार उसके ख़िलाफ़ 9 मई, 1995 को गलत आपराधिक मामला दर्ज किया गया था। उन्हें विशेष न्यायाधीश करनाल ने भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम की धारा 7/13 के तहत दोषी ठहराया था। याचिकाकर्ता को 24 अप्रैल, 2001 को सेवा से हटा दिया गया था। हालाँकि, अपील में 6 मार्च, 2003 के फैसले (संलग्न P-2) से इस न्यायालय द्वारा उनके दोषी होने के फ़ैसले को पलट दिया गया था। बरी होने पर, याचिकाकर्ता ने दिनांक 6 मार्च, 2003 को एक प्रतिनिधित्व (संलग्न P-3) दिया की उसे सभी परिणामी लाभों के साथ सेवा में बहाल किया जाये। याचिकाकर्ता के दावे को उत्तरदाताओं ने 27 अगस्त, 2003 (संलग्न P-4) को ख़ारिज कर दिया। आदेश (संलग्न P-4) में यह उल्लेख किया गया है कि याचिकाकर्ता को 9 मई, 1995 से निलंबन के तहत रखा गया था। उसे 24 नवंबर, 1999 को दोषी ठहराया गया था। उसे 24 अप्रैल, 2001 को उसे अपने बुरे आचरण के कारण सेवा से हटा दिया गया क्योंकि यह दुराचरण मोरल टरपिट्यूड की श्रेणी में आता है। याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपराधिक अपील को उच्च न्यायालय ने संदेह का लाभ देकर स्वीकार किया है। हरियाणा राज्य द्वारा जारी किए गये निर्देश–vide No. 11/2/97-2GS-III दिनांक 3 अक्टूबर, 1997 और साथ में HSEB कर्मचारी P&A रेगुलेशन, 1990 के रेगुलेशन 7.2(d) के प्रावधान (ii) के मद्देनजर सेवा से अपने आचरण के कारण निकाले जाने के निर्णय की कोई समीक्षा या संशोधन नहीं हो सकता है। इस कारण सेवा में वापिस लेने की याचिकाकर्ता की याचिका को ख़ारिज कर दिया गया था।

(3) याचिकाकर्ता का दावा है कि पंजाब सिविल सेवा नियम vol.1, भाग-1 के नियम 7.5 के अनुसार आपराधिक मुक़दमे में बरी होने के बाद उसका सेवा में

संपूर्ण पुराने वेतन के साथ वापिस लिए जाने का अधिकार है। अपनी दलील के समर्थन में याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के एक डिवीजन बेंच के निर्णय **हुकम सिंह, हिंदी सरकारी वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, इंद्री बनाम हरियाणा राज्य और अन्य** (संशोधित रिट याचिका संख्या 18048 of 1999) का वर्णन किया जो 23 नवंबर, 2000 को निर्णीत की गई थी। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने आगे कहा कि क्योंकि उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता को संदेह का लाभ देकर बरी किया था, पर यह याचिकाकर्ता को "सम्मानजनक" रूप से बरी नहीं करता है। वास्तव में, उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा था कि रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है कि अपीलार्थी ने PW-8 पूरन सिंह से अवैध प्रदान के रूप में कोई धनराशि मांगी थी और कि उसकी मांग पर पूरन सिंह ने कोई धनराशि दी थी। इस तरह यह स्पष्ट है कि यह बिना किसी सबूत का मामला है। इसलिए, प्रार्थी को पूर्ण वेतन के साथ पुनः कार्यान्वित किया जाना चाहिए।

(4) उत्तरदाताओं ने जवाबदावा दर्ज किया। उन्होंने यह दावा किया कि क्योंकि प्रार्थी को पूरी तरह से बरी नहीं किया गया है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि प्रार्थी का निलंबन पूरी तरह से अनुचित नहीं था। चूंकि प्रार्थी को नैतिक असाड़ेपन के आरोप में दोषी करार दिया गया था, इसलिए उसे सेवा में बरकरार नहीं रखा जा सकता।

(5) हमने दोनों पक्षों के विद्वान वकीलों को सुना है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

(6) उत्तरदाताओं द्वारा दिये गये आदेश की जांच में पाया गया कि प्रार्थी को सेवा से हटाने का आदेश प्रार्थी के दोषारोपण पर आधारित था। आदेश में यह

उल्लेख है कि प्रार्थी के दोषारोपण के कारण, उसे सेवा से हटाया जाता है। उक्त वाक्य के अलावा, आदेश में प्रार्थी के व्यवहार से संबंधित किसी भी परिस्थितियों का उल्लेख नहीं है, जो प्रार्थी के दोषारोपण से संबंधित हो सकती है। इसलिए, हमारी राय में, इस आधार पर विवादित आदेश को रद्द किया जाना चाहिए, क्योंकि इसमें महत्त्वपूर्ण तथ्यों का ध्यान नहीं रखा गया है। वैसे भी, प्रार्थी को अपील में बरी कर दिया गया था, तो उसे सेवा से हटाने के आदेश का आधार अब मौजूद नहीं था। उच्च न्यायालय ने साक्ष्य की विस्तृत जाँच के बाद प्रार्थी को बरी किया है। यह देखा गया है कि शिकायतकर्ता, पुरण सिंह, PW-8, गांव जुंदला में 8-1/2 किले की भूमि का मालिक था। वह न्यायालय में 5 अगस्त, 1997 को बयान देने से लगभग दो साल पहले हरियाणा राज्य विद्युत बोर्ड के अधिकारी नाथा राम के खिलाफ निगरानी विभाग के कार्यालय गए थे और उन्होंने उनपर 7500 रुपये मांगने का आरोप लगाया था। यह राशि नए ट्रांसफार्मर लगाने के लिए मांगी गई थी क्योंकि पुराना ट्रांसफार्मर ओवरलोड हो गया था और उसका ट्यूबवेल मीटर सही तरीके से काम नहीं कर रहा था। उसने यह भी कहा कि उसने पहले नाथा राम को 3200 रुपये दिए थे। उन्होंने यह भी बताया कि उनके फीडर के कनिष्ठ अभियंता सुखबीर सिंह मलिक थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि वे शशि कुमार याचिककर्ता को नहीं जानते थे। उन्होंने यह भी कहा कि याचिककर्ता कभी उनके फीडर के कनिष्ठ अभियंता नहीं रहे। उन्होंने कभी उससे कोई राशि नहीं मांगी और न ही उसे कोई राशि दी। यह गवाह पक्षद्रोही गवाह घोषित किया गया था, लेकिन उसके जिरह से कुछ उपयोगी नहीं निकला। वास्तव में, जिरह में उसने यह माना कि एचएसईबी के कर्मचारियों और पुलिस के कर्मचारियों के बीच झगड़ा हुआ था। उसने दोहराया कि उसने

याचिककर्ता को कोई राशि नहीं दी। इसलिए, उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि शिकायतकर्ता के बयान के अनुसार, याचिकाकर्ता शिकायतकर्ता को नहीं जानते थे, और उन्होंने उससे कोई राशि मांगी भी नहीं। PW-2 ट्रैप गवाह ने भी अपनी जिरह में यह स्वीकार किया कि वह विजिलेंस विभाग, करनाल का एक कर्मचारी था। वह करनाल में पिछले 10 से 15 वर्षों से चपरासी की नौकरी कर रहा था। उसने यह भी स्वीकार किया कि वह सतर्कता अधिकारी के साथ 3-4 छापों का हिस्सा था। इसलिए, उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि PW-2 एक स्वतंत्र गवाह नहीं था क्योंकि वह डीएसपी (विजिलेंस) के नियंत्रण में था। उच्च न्यायालय ने सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले मध्य प्रदेश राज्य बनाम जेबी सिंह(1) का हवाला दिया जिसमें भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत किसी अपराध को तब तक सिद्ध नहीं माना जाएगा जब तक ऐसा कोई सबूत न हो जो अवैध भ्रष्टाचार की मांग को साबित करे। उक्त कानूनी अनुपात पर निर्भरता करते हुए प्रार्थी को बड़ी किया गया है। इन परिस्थितियों में यह नहीं कहा जा सकता कि प्रार्थी का बरी होना सम्माननीय नहीं है।

(7) शब्द " सम्मांजनक बरी " या "संपूर्णत्य दोषमुक्त" दंड प्रक्रिया संहिता या आपराधिक विधिविज्ञान में अनजान हैं। ये शब्द मद्रास उच्च न्यायालय के एक विभागीय बेंच के संज्ञान में तब आए जब **संयुक्त राज्य भारत बनाम जयराम (2)** के मामले में विचार किया गया था। डिवीजन बेंच के फैसले में राजमन्नार, मुख्य न्यायाधीश ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> *"सम्मांजनक दोषमुक्ति" जैसी कोई धारणा दंड प्रक्रिया संहिता में नहीं है। दोषी का दोष साबित करने की जिम्मेदारी अभियोग पक्ष पर होती*

है, और वह दोष साबित करने में विफल हो जाते है, तो दोषी दोषमुक्ति का हक़दार हो जाता है।

सिविल सेवा नियमों के अनुच्छेद 193 के खंड (B) के अनुसार जब एक निलंबित सरकारी नौकर सम्मानजनक रूप से बरी हो जाता है, तो उसे उस समय का पूरा वेतन दिया जा सकता है जिसका वो हक़दार था यदि वह निलंबित न होता। यह केवल विभागीय जांच के मामले में ही लागू होता है।

जहाँ सेवक को इसलिए निलंबित किया गया था क्योंकि उसके खिलाफ एक आपराधिक मुकदमा था, और उसमें उसे दोषमुक्त किया गया था, और उसे पुनः बहाल किया गया था, उसे सामान्य कानून के तहत निलंबन की अवधि के दौरान पूरा वेतन दिया जाता है। ऐसे मामले में अनुच्छेद 193(B) लागू नहीं होता।"

(8) मद्रास उच्च न्यायालय के उक्त फ़ैसले पर इस न्यायालय ने **जगमोहन लाल बनाम पंजाब राज्य पंजाब सरकार के सचिव के द्वारा** फ़ैसले में विचार किया और उसका अनुसरण किया। उस मामले में, बरी होने पर प्रार्थी को सेवा में बहाल किया गया, लेकिन उसकी निलंबन अवधि को कार्यदान की अवधि के रूप में नहीं गिना गया। इसलिए, उसने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत रिट प्रार्थना दायर की और दावा किया कि वह अपने निलंबन की अवधि के लिए पूरे वेतन और भत्तों का हकदार है।

पंजाब सिविल के नियम 7.3, 7.5 और 7.6 वॉल्यूम. I, भाग I को देखते हुए यह प्रेक्षित किया गया : –

(2)xxx xxx xxx xxx

"सरकार द्वारा नियम पर किया गया व्याख्यान गलत है। आरोपी पर लगाया गया आरोप यह था कि उसके खिलाफ एक आपराधिक अभियोग था, जिसके तहत उसकी सुनवाई चल रही थी। जैसे ही उसे उस आरोप से बरी किया जाता है, वह उस आरोप से मुक्त होता है। आपराधिक कानून में, न्यायालयों को यह तय करना होता है कि क्या मुकदमे में आरोपी पर दोष सिद्ध किया गया है। जब न्यायालय को आरोपी के दोष को लेकर संतोष नहीं होता, तो उसे बरी कर दिया जाता है। चाहे कोई व्यक्ति संदेह के आधार पर बरी हो या किसी और कारण से, नतीजा यही होता है कि उसका दोष सिद्ध नहीं होता। दंड प्रक्रिया संहिता में 'सम्मांजनक बरी' कहीं नहीं दिया है। संहिता में दिये गये शब्द केवल 'डिस्चार्ज' या 'दोषमुक्त करना' हैं। व्यक्ति को डिस्चार्ज किए जाने या बरी किया जाने का प्रभाव कानून की दृष्टि से समान होता है। आपराधिक न्याय की स्वीकृत धारणाओं के अनुसार, न्यायालय को आरोपी पर दोष सिद्धि के लिए संदेह से पड़े संतुष्ट होना पड़ेगा। अगर न्यायालय के मन में मुलज़िम के गुनाह को लेकर कोई संदेह हो तो मुलज़िम को बरी किया जाता है।

इसलिए, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि नियम 7.5 का उद्देश्य केवल यह हो सकता है कि जिस पल एक अधिकारी को आपराधिक आरोप के कारण निलंबित किया गया था, और जिस आरोप मामले में कोर्ट में वह बरी हो जाता है, उसे दोष मुक्त समझा जाना चाहिए। किसी और व्याख्या से यह नियम का उद्देश्य बिगड़ जाएगा। किसी भी फ़ैसले में सम्मांजनक बरी या पूर्ण निर्दोषता की

खोज करना निरर्थक है। वजह स्पष्ट है; आपराधिक न्यायालयों का मकसद आरोपी की मासूमियत को खोजना नहीं है। उनका केवल इतना ध्यान होता है कि क्या आरोपी का दोष अभियोग पक्ष द्वारा संदेह से पड़े सिद्ध किया गया है।

(9) **भारत संघ बनाम जयराम (Supra)** मामले में न्यायालय के फ़ैसले का गुजरात उच्च न्यायालय के एक डिवीजन बेंच ने भी **रामसिंघजी वीराजी राठौड़ परमानंद सोसायटी बनाम गुजरात राज्य और अन्य** मामले में अनुसरण किया है। उक्त मामले में यह प्रेक्षित किया गया है : –

"सिविल सेवा नियम का अनुच्छेद 193 का खंड (B), जो मद्रास हाईकोर्ट के समक्ष विचाराधीन था वास्तव में हमारे नियम 152 के समान थी, बस अंतर यह था कि "पूर्ण बरी" की जगह "सम्माननीय अपराधमुक्त" शब्द का प्रयोग था। हम श्री राजमन्नार, मुख्य न्यायाधीश के तर्क से सम्मान सहित सहमत हैं, और हमारे विचार में, संबंधित प्राधिकरणों के लिए अपराधिक न्यायालय के निर्णय के विषय में अपराधमुक्ति या पूर्ण बरी की अवधारणा लाना उचित नहीं है। एक आपराधिक मामले में आरोपी को केवल आरोप सिद्धि के लिए बुलाया जाता है और वह आरोप से इस प्रकार बच सकता है - (क) यह साबित करके कि उसके विरुद्ध झूठा मुक़दमा हुआ है (ख) कि उसके विरुद्ध दोष संदेह से परे साबित नहीं हुए हैं (ग) कि बचाव पक्ष की दलीलें सही है और अभियोग पक्ष की दलील ग़लत है। इन तीन में से किसी भी मामले में, अगर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अभियोग पक्ष मामले को संदेह से परे नहीं सिद्ध कर पाया या अभियोग मुक़दमा सही नहीं है या बचाव पक्ष सही है, आपराधिक न्यायालय मुलज़िम को बरी करने के लिए बाध्य हो जाता है। अपराधी को हर मामले में निर्दोषता सिद्ध करने के लिए बुलाया

नहीं जाता है और यह काफी है कि वह न्यायालय को संतुष्ट करे कि अभियोग पक्ष ने मामले को संदेह से परे साबित नहीं किया है। चूँकि उसे सकारात्मक मामले को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, अपराधमुक्ति या पूर्ण बरी की अवधारणा अपराधिक मुक़दमे में नहीं आता। इसलिए हम जयराम के मामले में श्री राजमन्नार, मुख्य न्यायाधीश की टिप्पणी से सहमत हैं।"

(10) इसके बाद इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने हुकम सिंह (Supra) के मामले में नियमों को पढ़कर यह निर्धारित किया :-

" यह स्पष्ट है कि नियमों के नियम 7.3 एक सामान्य नियम है, जबकि जब व्यक्ति को बरी कर दिया गया हो, तो नियमों का विशेष नियम 7.5 आकर्षित होगा। यह कानून अच्छी तरह से स्थापित है कि विशेष नियम की हमेशा सामान्य नियम पर प्राथमिकता रहेगी और इसलिए, नियम 7.5 के तहत, याचिकाकर्ता पूरी तरह से पुराने वेतन का हकदार था, और ऊपर उल्लिखित पहले के फैसले वर्तमान मुक़दमे पर लागू नहीं है।

हमारे विचार में, हमारा फ़ैसला इस न्यायालय के निर्णय ***महा सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, 1993 (8) Services Law Reporter, 188*** *पर आधारित है। इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश* ***लैहना सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, 1993 (3) Recent Services Judgments 199*** *में भी समान निर्णय लिया गया था। इन सब को ध्यान में रखते हुए, हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि विवादित आदेश माना नहीं जा सकता। नियमों के नियम 7.5 के संदर्भ में, प्रार्थी के बरी होने पर वह निलंबन की अवधि के वेतन और भत्ते का पूर्ण हकदार होगा...."*

(11) हमारे विचार में कानून के दृष्टिकोण से प्रार्थी को सभी लाभों के साथ सेवा में पुनः बहाल होने का स्पष्ट अधिकार है। हम 27 अगस्त, 2003 के आपत्तिजनक आदेश (Annexure P-4) को रद्द करते है। हम निर्धारित करते है कि प्रतिवादी को पूरे वेतन के साथ सेवा में पुनः बहाल किया जाए। मान्यवर अग्निहोत्री ने यह दलील दी है कि अब प्रतिवादी को विभागीय जांच करने का अवसर दिया जाए। हमारे विचार में उच्च न्यायालय के निर्णयों के आधार पर आगे की विभागीय जाँच की मंज़ूरी देना उचित नहीं होगा। इसलिये हम प्रतिवादियों द्वारा की गई प्रार्थना को अस्वीकार करते हैं।

(12) उपरोक्त कहे अनुसार याचिका को स्वीकार किया जाता है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाता।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

उदित अग्रवाल

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी

(Trainee Judicial Officer)

करनाल, हरियाणा